Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन दर्शन

वर्ष : १४ अङ्क : ६

जून, १९७९

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन-दर्शन

मानव सेवा संघ, वृन्दावन

जून १९७९

विषय-सूची

१. माया का तिरस्कार १

२. संत-वाणी ४

३. शरीर धर्म एवं स्वधर्म
—पू० देवकी बहिन जी ७

४. खुद को तुझे होते देखा (गजल)
—श्री श्यामलाल सक्सैना ९

५. साधन क्यों ?
—डा० नरेन्द्र लाल चतुर्वेदी १०

६. बोध प्रसंग ... १५

७. कर्तव्य-विज्ञान
—श्री शादी लाल वर्मा १८

८. संत-पत्रावली २१

९. साधकोपयोगी बातें
—श्री जीवन राम जी २२

१०. वह एक (कविता)
—श्री कृष्ण लाल बजाज 'प्रदीप' २३

११. क्या भगवान हैं ?
—श्री भारतेन्दु प्रकाश सिंहल २४
आई. पी. एस.

१२. जीवन निर्माण और समाचार पत्र
—श्री पदम कुमार गर्ग २९

१३. सच्चे मनुष्यों का निर्माण
—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ३१

सम्पादक : अद्वैत चैतन्य

वार्षिक मूल्य : ६ रुपये

एक प्रति का : ५० पैसे

आवश्यक निवेदन :

१—'जीवन-दर्शन' प्रत्येक पूर्व मास के अन्तिम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगा। इसका वर्ष १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक रहेगा। बीच में ग्राहक बनने वालों के लिये भी वर्ष १ जनवरी से ही प्रारम्भ होगा।

२—पत्र का उत्तर तथा लेख वापस पाने के लिये आवश्यक डाक-टिकट भेजें। पत्र-व्यवहार करते समय कृपया अपना ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

३—पता बदलने के लिए एक मास पूर्व सूचना देनी चाहिए।

४—जीवन-दर्शन के आजीवन सदस्य कम से कम १०१) रु० लेकर बनाए जाते हैं।

५—पत्रिका संबंधी समस्त पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पते से करें।

व्यवस्थापक :
'जीवन-दर्शन' कार्यालय,
मानव सेवा सङ्घ, वृन्दावन (मथुरा)
पिनकोड—२८११२१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग विकास की भूमि है

जीवन-दर्शन

उद्देश्य

मानव-जाति के सर्वतोमुखी विकास की तथा कर्तव्यपरायणता एवं साधन-निष्ठ जीवन की प्रेरणा देना।

वर्ष १४] वृन्दावन जून १९७९ [अङ्क ६

माया का तिरिस्कार

ॐ

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र
विधूय मायाँ वयुनोदयेन।
विमुक्तसंगो जितषट्सपत्नो
वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत्॥
न यावदेतन्मन आत्मलिंगं
संसार तापावपनं जनस्य।
यच्छोक मोहामय रागलोभ-
वैरानुबन्धं ममतां विधत्ते॥

(श्रीमद्भागवत् ५।१२।१५-१६)

भावार्थ—राजन् जब तक मनुष्य ज्ञानोदय के द्वारा इस माया का तिरिस्कार कर, सबकी आसक्ति छोड़कर तथा काम-क्रोधादि छः शत्रुओं को जीतकर आत्म-तत्त्व को नहीं जान लेता और जब तक वह आत्मा के उपाधि रूप मन को संसार-दुःख का क्षेत्र नहीं समझता, तब तक वह लोक में यों ही भटकता रहता है; क्योंकि यह अशुद्ध चित्त उसके शोक, मोह, रोग, राग, क्षोभ और वैर आदि के संस्कार तथा ममता की वृद्धि करता रहता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—वेदान्त (अद्वैत) दर्शन समस्त दृश्यवर्ग को मायाकृत मानता है तथा चेतन जगत का मूल स्रोत एक मात्र ब्रह्म को ही स्वीकार करता है। 'माया' का अर्थ होता है—'जो नहीं है'। इस दृष्टिकोण से प्रतीति-मात्र मिथ्या है। अविद्या के कारण ही उसकी सत्ता प्रतीत होती है। यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, किन्तु सभी विचारकों को मान्य नहीं है। सामान्य साधक के लिए यह सब एक पहेली का रूप धारण कर लेती है। जो नहीं है उसकी प्रतीति क्यों? और वह सुख-दुःख का कारण क्यों? तीनों काल में जिसकी सत्ता नहीं उसका भास क्यों और वह बंधन में हेतु क्यों? इत्यादि प्रश्न मानस में उभरते हैं।

समझने के लिए हम ऐसा कह सकते हैं कि ब्रह्म अपनी माया-शक्ति से (जो अनिर्वचिनीय है) इस जगत की रचना करते हैं। वैष्णव मत के अनुसार यह सब प्रभु की लीला है। परमात्मा में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊं—एकोऽहं—बहुस्यामि। बस जगत प्रकट हो गया। पर जीव कहाँ से आगया, 'मैं' का सृजन कैसे होगया? इसका कोई भी समुचित समाधान उपनिषदों में (जिन पर सभी दार्शनिक मत आधारित हैं) भी नहीं मिलता। यह खोज का विषय है। वस्तुतः चेतना का उद्गम अपने आपमें एक बहुत बड़ा रहस्य है और इसके समाधान ही में सभी समस्याओं का समाधान है। अस्तु,

तीन दृष्टिकोण हमारे सामने आते हैं—भौतिकवादी, अध्यात्मवादी एवं आस्तिकवादी। भौतिकवादी विश्व की, जगत की सत्ता स्वीकार करते हैं और सेवा को अपना साधन स्वीकार करते हैं। अध्यात्मवादी आत्मा की सत्ता स्वीकार करते हैं और असंगत होकर निवृत्ति को अपना साधन बनाते हैं। आस्तिकवादी परमात्मा को ही जीव और जगत का आदि कारण स्वीकार करते हैं एवं उनकी भक्ति को प्रमुख साधन मानते हैं। साधक इनमें में से कोई भी एक दृष्टिकोण अपना कर अपने साधन का निर्माण कर सकता है।

करने, जानने और मानने की शक्तियां कम या अधिक रूप में हम सभी में विद्यमान हैं। साधननिष्ठ होने के लिए इन शक्तियों के समुचित उपयोग का ज्ञान साधक को होना आवश्यक है। प्रस्तुतः श्लोक में चूंकि ज्ञानोदय की महत्ता का प्रतिपादन है अतः हम अन्य दोनों क्रियाशक्ति (करना) औरभावशक्ति (मानना) का संक्षिप्त विवेचन कर अपने मुख्य विषय पर विचार करेगें।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रियाशक्ति बल का ही एक प्रकार है। बल का सदुपयोग निर्बलों की सेवा में ही है। इसी का दूसरा नाम कर्त्तव्य परायणता अथवा धर्म-विज्ञान है। चूंकि किसी भी कर्म का फल कर्म-विधान से मिलना आवश्यंभावी है, अतः कर्म बंधन का कारण न बने साधक को इसका ध्यान रखना है। बुराई रहित भलाई करना ही वह रास्ता है जिसके द्वारा साधक इस शक्ति का सदुपयोग कर सही मानव बन सकता क्योंकि—

हो फरिश्ता भी तो नहीं इन्सा,
दर्द थोड़ा-बहुत न हो जिसमें।

परपीड़ा से पीड़ित होना ऐसे साधकों का विशेष लक्षण है।

आस्तिक वही है जिसे परमात्मा की सत्ता में विकल्प रहित विश्वास है। सारा संसार मिलकर उससे कहे कि 'परमात्मा नहीं है, तुम व्यर्थ भ्रम में हो' तब भी वह अपनी मान्यता पर अडिग रहे, यह आस्तिक का लक्षण है। उसे किसी और से कोई लेना-देना नहीं रहता। कवि के शब्दों में—

तुम्हारी जात से मतलब है
दोनों दुनिया में,
न कुछ यां से गरज है
न कुछ वां से।

*मदिरालय

यही मानने की अथवा भावशक्ति का सदुपयोग है। जानने की (ज्ञान शक्ति) शक्ति का सदुपयोग है—संसार की वास्तविकता जानने में और आत्मा की खोज करने में। **ज्ञानोदय वस्तुतः अपने ज्ञान का आदर ही है।** बाहर जो कुछ दिखायी देता है वह 'माया' नहीं है। माया अपने भीतर है। भगवान् दत्तात्रेय (**अवधूत गीता**—२-१९-२०) में कहत हैं—

"बाहर की ओर सृष्टि है, भीतर माया है और उसके भी भीतर आत्मा जानने योग्य है। जैसे नारियल तो विश्व है उजके भीतर जो गोला (गिरी) है वह माया हैं। और गोले के भीतर जो निर्मल, सुस्वादु जल है वह आत्मा चैतन्य) का रूप है। संसार से दूर भागने की बात सोचना ज्ञान का दुरुपयोग करना है-

ऐ 'जौक' गर है होश तो
दुनिया से दूर भाग,
इस मयकदे* में काम नहीं,
होशियार का।

लेकिन संसार से दूर भागने में होशियारी कुछ भी नहीं क्योंकि संसार तो हमारे भीतर है। खुद से भागकर कहां जाओगे ? विचारमार्ग के साधकों को पूज्य श्री महाराज भी के शब्दों में "संसार से त्यागे हुए

.....(शेष पृष्ठ ५ पर)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यक्तिगत क्रान्ति

महानुभाव !

मानव अपनी अवनति तथा गरीबी और नीरसता एवं पराधीनता आदि विकृतियों का स्वयं जिम्मेदार है, कारण कि मानव के रचयिता ने उसे चिर-शान्ति स्वाधीनता एवं प्रियता से परिपूर्ण होने की स्वाधीनता अपनी अहैतुकी कृपा से प्रेरित होकर प्रदान की है।

जब तक मानव इस वास्तविकता को स्वीकार नहीं करेगा, तब तक उसे किसी प्रकार भी चैन नहीं मिल सकता। यह मंगलयम विधान है। किसी अन्य के द्वारा यदि मानव का सर्वतोमुखी विकास हो सकता तो मानव समाज में कोई समस्या ही नहीं रहती। समय-समय पर अनेकों महामानव आये और अपने को और समाज को आनन्दित किया। इतना ही नहीं एक-एक महामानव की महिमा का गुणगान तथा किसी न किसी अंश में अनुसरण बहुसंख्यकों ने किया, किन्तु समस्त मानव जाति की समस्या हल नहीं हुई। इस के मूल में यही भूल है कि जब तक मानव सर्वांश में अपने द्वारा, अपने लिये, अपने सत्य को स्वीकार नहीं करता, तब तक जगत की उदारता तथा सत्पुरुषों की सद्भावना भी उसकी समस्याओं को हल नहीं कर पाती। यह सर्वमान्य तथा अनुभव-सिद्ध सत्य है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जगत की उदारता तथा सत्-पुरुषों की सद्भावना कोई अर्थ नहीं रखती। तात्पर्य यह है कि जब तक मानव अनन्त की दी हुई स्वाधीनता का सर्वांश में सद्पयोग नहीं करता, तब तक उसकी सभी समस्याओं का हल नहीं होता। अतएव यह स्पष्ट ही है कि जो सजग मानव मिली हुई स्वाधीनता का सद्पयोग करता है उसका सर्वतोमुखी विकास होता ही है और उससे रचयिता को प्रसन्नता होती है तथा समस्त विश्व हर्षित होता है। इस दृष्टि से स्वाधीनता के सदुपयोग में ही मानव के पुरुषार्थ की चरम सीमा है, जिसे प्रत्येक मानव स्वाधीनतापूर्वक कर सकता है। मिली हुई स्वाधीनता के दुरुपयोग से ही मानव की दुर्दशा हुई है, जिसका साधक के जीवन में कोई स्थान नहीं है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूल में मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग ही सबसे बड़ी भूल है। इस भूल का अन्त करने के लिये ही मानव-सेवा-संघ ने व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामूहिक सत्संग योजना की प्रेरणा दी है। मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग न करना वह सत्य है कि जिसे अपनाते ही मानव स्वाधीनतापूर्वक उस जीवन को पा जाता है, जिसे पाकर कुछ और पाना शेष नहीं रहता। यह व्यक्तिगत क्रान्ति है। व्यक्तिगत क्रान्ति से ही व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है अर्थात् जगत तथा जगत्पति के काम आ सकता है। इसी पवित्रतम उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही अनन्त ने अपने ही में से अपनी अहैतुकी कृपा से प्रेरित होकर मानव की रचना की है। सर्व-समर्थ आप सभी को मिली हुई स्वाधीनता के सदुपयोग की सामर्थ्य प्रदान करें, इसी सद्भावना के साथ— ।

(शेष पृष्ठ ३ का)

मल की भांति विमुख होना है" काम-क्रोधादि शत्रु बाहर नहीं अपने भीतर है; संसार से संबंध ही इनका मूल कारण है। जब तक साधक मन से ऊपर नहीं उठ जाता, आत्मा को नहीं जान सकता। जिस प्रकार धूलयुक्त दर्पण छवि को ठीक से प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता, उसी प्रकार चित्त की अशुद्धि ही आत्म-दर्शन में बाधक है। साधक को न शरीर की निंदा करनी है न संसार की। उसे तो केवल अपना भ्रम मिटाना है। भ्रम यही है कि उसने शरीर को अपना मान लिया है और उसके कारण संसार से संबंध स्थापित कर लिया है। जिसके कारण वह अनेक विकारों में आबद्ध होगया है। माया में फँस गया है। कवि के शब्दों में उसे बस यही करना है —

दिलानशो दहर[1] के नक्शों को
न होने दीजे,
इस खयाबां[2] से गुजर जाइये,
दरिया होकर।

—+—

[1]संसार [2]बगीचा

संतवाणी

१ प्रभु विश्वास और कर्तव्य-परायणता पर कोई टैक्स नहीं लग सकता।

२ स्वाधीनता के पश्चात् दुःख इसीलिए बढ़ गया कि हम लोग सेवाको भूल गये, त्याग को भूल गये और सुख-भोग को पसन्द करने लगे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शरीरधर्म एवं स्वधर्म

(पूज्या देवकी बहिन जी)

मानव का एक नाम साधक है। मानव की अपनी माँग होती है। उस माँग की पूर्ति का दायित्व भी उस पर होता है। दायित्व को पूरा करने की सामर्थ्य भी मानव में होती है। इस दृष्टि से मानव उसे कहते हैं जो अपने में चिर-शान्ति, परम स्वाधीनता और परम प्रेम की माँग अनुभव करता है। इस माँग की पूर्ति के लिये उसका यह दायित्व हो जाता है कि वह अपने जाने हुए असत् के संग का त्याग करदे अर्थात् अपने द्वारा अपने साथ सत्संग करे। इस दायित्व की पूर्ति में मानवमात्र समर्थ एवं स्वाधीन है। यह मानव जीवन की महिमा है और जीवनदाता की मंगलकारिता है। जीवन की माँग पूरी हो जाय इसके लिये साधक को स्वधर्म और शरीर-धर्म का पालन अनिवार्य है। शरीर धर्म क्या है ? मानव-सेवा संघ का एक नियम है "निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।" इस नियम के पालन से शरीर-धर्म का पालन जो जाता है। शरीर संसार की जाति का है। संसार में ही उत्पन्न होता है और भौतिकी विधान के अनुसार ही उसका ह्रास होता है और वह मिटकर भौतिकी तत्वों में ही समाहित हो जाता है। इस दृष्टि से शरीर और संसार का अविभाज्य सम्बन्ध है। इस प्राकृतिक तथ्य को ध्यान में रख कर प्राप्त शारीरिक सामर्थ्य को संसार की सेवा में लगाना अनिवार्य है। जिन महानुभावों ने शरीर और संसार की एकता को सुरक्षित रखा उनके द्वारा संसार के किसी प्राणी की कभी कोई क्षति नहीं हुई। जब एक शरीर की रक्षा अपने को अभीष्ट है तो अन्य शरीरों को कष्ट पहुंचाना शरीर धर्म के विपरीत है। स्थूल शरीर को सुख देने के लिए सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन की बात पूरी करने के लिये तन को विकृत बना देना शरीर-धर्म के विपरीत है। साधक जन प्राप्त शरीरों का उपयोग सुख-भोग में नहीं, सेवा में करते हैं। श्रम, संयम एवं सदाचार के द्वारा तीनों शरीरों को स्वस्थ एवं सबल रखते हैं। वे इस बात को जानते हैं कि सुख भोग की प्रवृत्ति में शारीरिक शक्तियों का ह्रास एवं भोग्य वस्तु का विनाश होता है। इस कारण वे प्राप्त सामर्थ्य का उपयोग सुख भोग में न करके साधन सामग्री के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप में करते हैं। प्राप्त बल का दुरुपयोग न करना प्रत्युत उसके सदुपयोग द्वारा जन-समाज की सेवा करना शरीर धर्म है।

शरीर-धर्म का पालन मानवमात्र के लिये अनिवार्य है। इसके पालन से सुन्दर समाज का निर्माण होता है। सुन्दर समाज का अर्थ क्या है? जिसमें व्यक्ति और समूह की, सबल और निर्बल की एकता सुरक्षित रहे, जिसमें व्यक्ति और समूह एक दूसरे के अधिकार की सुरक्षा में तत्पर रहें। ऐसे सुन्दर समाज का निर्माण तभी संभव है जब हर व्यक्ति सजगतापूर्वक शरीर-धर्म का पालन करे। शरीर पर किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार नहीं है। इस पर किसी व्यक्ति का स्वतंत्र नियंत्रण नहीं चलता है। शरीर से अपना नित्य सम्बन्ध नहीं है। इस सत्य को जान कर साधक-जन शरीर की ममता को छोड़ देते हैं। शरीर और संसार के संयोग जनित सुख की कामना का त्याग कर देते हैं। ममता और कामना का अन्त करके शरीर को निकटवर्ती जनसमाज की क्रियात्मक सेवामें लगा देने से साधक में शरीरों से असंग होने की सामर्थ्य आ जाती है। इस दृष्टि से शरीर विश्वरूपी बाटिका की खाद है। इससे अधिक उसका और कोई महत्व नहीं है। अपने को जो चाहिये वह शरीर की सहायता से नहीं मिल सकता।

चिर-शान्ति, जीवन-मुक्ति एवं भगवद्भक्ति स्वधर्म-पालन से प्राप्त होती है। मानव का स्वधर्म क्या है? निज विवेक के प्रकाश में अपने जाने हुए असत् के संग का त्याग स्वधर्म है। आस्था-श्रद्धा-विश्वासपूर्वक बिना देखे, बिना जाने परम प्रेमास्पद प्रभु की आत्मीयता को स्वीकार करना स्वधर्म है। दृश्यमात्र से सम्बन्ध तोड़ लेने पर चिर-शान्ति एवं जीवन मुक्ति मिलती है। प्रभु से आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार कर लेने पर उनकी मधुर स्मृति एवं प्रियता जाग्रत होती है। दृश्य से असंगता एवं प्रेमास्पद के प्रति प्रियता, ये साधन तत्व हैं। ये साधन-तत्व साधक में स्वतः अभिव्यक्त होते हैं। साधन-तत्व की अभिव्यक्ति शरीर-धर्म नहीं है। यह किसी क्रिया-जनित अभ्यास से संभव नहीं है। यह सत्संग से साध्य है। सत्संग मनुष्य का स्वधर्म है। सत्संग करने में मानवमात्र स्वाधीन एवं समर्थ है। दृश्य को असंगता से 'नहीं' की निवृत्ति हो जाती है। नित्य सम्बन्ध की स्वीकृति से 'है' की अभिव्यक्ति हो जाती है। यह जीवन का सत्य है। इस सत्य को स्वीकार करना जीवन की सफलता का मूल-मंत्र है। इसी आधार पर मानव-सेवा-संघ का यह सिद्धान्त बना है कि शरीर धर्म के पालन से सुन्दर समाज का निर्माण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं स्वधर्म के पालन से व्यक्ति का कल्याण अवश्यंभावी है, जो मानव मात्र को अभीष्ट है।

मानव सेवा संघ की प्रणाली में सत्संग की योजना पर विशेष जोर डाला गया है। सत्संग ही एक मात्र वह योजना है जो मानव समाज को शरीर-धर्म एवं स्वधर्म का स्पष्ट बोध कराती है। मानव समाज को जीवन के प्रति जागरूक होने को प्रेरणा देना बहुत बड़ी सेवा है। व्यक्ति जब अपनी मौलिक माँग को स्पष्ट-रूप से जान लेता है और उसको पूर्ति के लिये अपने दायित्व को पूरा करने में तत्पर हो जाता है तो उसके अहम् रूपी अणु में ही अदम्य शक्ति की अभिव्यक्ति हो जाती है। जीवन अपने में है, अभी है, सर्वत्र है और सभी का है। उसकी माँग मानवमात्र अनुभव करता है। परन्तु प्रमादवश जब तक दृश्य के संयोगजनित सुख की विविध इच्छाओं का समर्थन व्यक्ति करता रहता है, तब तक माँग तीव्र नहीं होती। सत्संग के प्रकाश में इच्छा रहित होते ही माँग तीव्र होती है और माँग की तीव्र जागृति में माँग की पूर्ति निहित है, यह मानव जीवन का मंगलमय विधान है।

—

मंडूक-मानस

कुएं में एक छोटा-सा मेंढ़क था; वहीं पर जन्मा और वहीं पला। एक दिन कोई समुद्री मेंढ़क किसी तरह उस कुएं में आ गिरा। कुएं के मेंढ़क ने उससे पूछा-'कहाँ के रहने वाले हो?' उत्तर मिला—'समुद्र का।' कुएं का मेंढ़क बोला-'समुद्र! कितना बड़ा है वह?' उत्तर मिला-'बहुत बड़ा।' कुएं के मेंढ़क ने अपनी टाँग पसारकर सवाल किया-'क्या इतना बड़ा।' समुद्री मेंढ़क ने कहा 'इससे तो बहुत ही बड़ा है।' कुएं के मेंढक ने छलांग भरकर कुएं के दूसरे किनारे पहुँचकर वहाँ से पूछा-' 'क्या इस कुएं जितना बड़ा?' समुद्री मेंढक ने उसे समझाने की कोशिश की कि कुएं की समुद्र से कोई तुलना नहीं की जा सकती। इस पर कुएं का मेंढक झल्लाकर बोला-'नहीं, हमारे कुएं से बड़ी कोई चीज हो ही नहीं सकती। लोगो, यह बड़ा झूठा है; इसे निकाल बाहर करना चाहिये।' सभी संकुचित बुद्धि लोगों की यही हालत है। वे अपने-अपने कुओं में बैठकर सोचते हैं कि दुनिया बस इतनी ही है।

—रामकृष्ण परमहंस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गजलः—

खुद को-तुझे होते देखा

—श्री श्याम लाल सक्सेना 'श्याम'

इसे हंसते देखा उसे रोते देखा
तमाशा यही उम्र भर होते देखा ।।
कोई आ रहा है कोई जा रहा है--
मुसाफिर कोई कब्र में सोते देखा ।।
जहाँ इल्म[1] की कद्र होती नहीं है
वहाँ आजिमों[2] को (अ)जमीं[3] जोते देखा ।।
करेगा-भरेगा है दस्तूरे[4] दुनिया,
वही काटता है कि जो बोते देखा ।।
जहाँ[5] में हर-एक काम करते हुए भी
बशर[6] आलमे खवाब[7] में सोते देखा ।।
मिला है तुझे जायगा छूट यकदिन.
यहाँ पाते देखा-वहाँ खोते देखा ।।
कयानत[8] न हांसिल[9] अमीरों को हमने
जरोसोम[10] की गठरियां ढोते देखा ।।
पशेमान[11] बहते नदामत[12] के आंसू
गुनाहों की चादर को यूं धोते देखा ।।
दुई[13] मिट गई 'श्याम' तेरा करम[14] है
तसब्बुर[15] में खुद को तुझे होते देखा ।।

---

१. विद्या २. विद्वानों ३. खेत ४. विधान ५ दुनिया ६. आदमी ७. स्वप्नावस्था ८. संतोष ९. प्राप्त १०. सोने-चादी ११. अपने किये पर दुखी १२. पश्चाताप १३. द्वैत भावना १४. अहैतुकी कृपा १५. ध्यान में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधन क्यों ?

—डॉ नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

गोयल भवन, मामा-भानजा, झालावाड़ (राज०)

यह प्रश्न और कहीं नहीं हर साधक के सम्मुख ही सबसे पहले उपस्थित होता है कि साधन क्यों ? हम चाहते क्या हैं ? मनुष्य की माँग क्या है ? अगर वह अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हैं तो फिर यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता है। पर अगर उत्तर नहीं में आए....तो यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। जिसका पेट खाली है, उसके सामने भूख का सवाल सबसे बड़ा है। लगता है, यही सबसे बड़ी जरूरत है। नौकरी, और उससे बड़ी नौकरी या बड़ी दुकान खोलना, सब पेट भरने का ही तो साधन है। पर पेट कितना बड़ा है, जितना धन होता है, उतना ही खाली रहता है। किसी तरह जब पेट भरता है, तब शरीर की भूख जगती है। इसीलिए शरीर की भूख न जगे, हजारों साल से पेट की भूख पर नियंत्रण रखने की बात कही जारही है। अनशन उपवास, सब उसी के रूप हैं। पेट की भूख और शरीर की भूख जैविक आवश्यकताऐं हैं। इससे इतर मनुष्य की मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताएं भी बढ़ती है। कला और संस्कृति, सभ्यता और विकास यात्रा, इन्हीं का विस्तार है। सभ्यता, मनुष्य की वहिर्मुखता का ही विस्तार है। मन चंचल है, गत्यात्मक है, है, इसीलिए सभ्यता निरंतर गतिशील है। पर यह मनकी स्वाभाविक अवस्था नहीं है, वह कितना भी गति में क्यों न हो, सदैव नहीं रह सकता, उसे स्थिति में आना ही होता है। हर श्रम का प्रारम्भ और अन्त प्रशांति में है। नींद से उठकर मनुष्य सब कुछ करता हुआ फिर नींद में जाना चाहता है। यही उसके सम्पूर्ण जीवन की यात्रा है।

विश्राम मन की स्थिरता है, यहीं कला और संस्कृति आकार ग्रहण करती हैं। संस्कृति मन की अन्तर्मुखी यात्रा है। यह भी मनुष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की माँग है । पेट की भूख और शरीर की भूख के बाद विलासिता की भूख बढ़ती है। विलासिता का आधार आकांक्षा है, संसार इसी कामना का ही विस्तार है। मनुष्य सम्भावना की भूख में रहता है, निरंतर कुछ न कुछ होने की संभावना । जैविक आवश्यकताओं के ऊपर मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताए हैं। यह जो भूख है, उसका आधार आकांक्षा है। और इन सब आवश्यकताओं का एक लम्बा सिलसिला है, जिसमें कि मनुष्य उलझता है।

सवाल फिर खड़ा होता है । यह सब क्यों ? मैं इतना सब कुछ क्यों चाहता हूँ ? मैं आखिर जीवित ही क्यों हूँ ? मैं इस लम्बी यात्रा पर निरंतर चल ही नहीं रहा हूं, दौड़ रहा हूं, आखिर किसलिए ? पेट की भूख समाप्त होते ही तुष्टि देती है। शरीर अपनी काम-क्षुधा की तृप्ति के बाद क्षणिक तुष्टि लेता है। सिलसिला रुकता नहीं है, चलता रहता है। पढ़ना, रोज पढ़ना .... नौकरी तक। नौकरी से और दूसरी बड़ी नौकरी तक.... धन की ललक। आदिम पारस का ललक जो वस्तुएँ देगी। वस्तुएँ जिनसे परितुष्टि प्राप्त होगी। शरीर क्षणिक है, जर्जर है, कब ढह जाए, इसीलिए अमृत की खोज हुयी। शरीर ही नहीं रहा तब तुष्टि किसे ? अक्सर इन्हीं सबके लिए उमर बीत जाती है।

मन्दिर, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, गुरूडम, समष्टि भंडारे,....इन सबके पीछे जो भीड़ है,....वह क्या चाहती है ? तुष्टि का अगाध भंडार। उसकी तृप्ति में कभी कोई कमी न आए। यही सुखोपासना सभ्यता का केन्द्र है। संकल्प पूर्ति सुख देती है, और संकल्प पूर्ति का अभाव दुख देता है। यही सुख-दुख की यात्रा है। मनुष्य सुख चाहता है, मात्र सुख। सुख अल्प है, दुख अनन्त है। इसीलिए ईश्वर की खोज है, ... एक बड़े आधार की खोज जो दुख दूर करेगा, ...अनवरत सुख देगा । अनन्त सुख। और यही नहीं मिलता है, ...शेष रह जाता है, ... विक्षोभ, ... व्यथा, ...दुःख का प्रभाव .... यहीं से साधन-यात्रा शुरू होती हैं। स्थायी सुख की खोज.... जहाँ अमृत है।

कामना पूर्ति से प्राप्त तुष्टि का भाव ही सुख है। यह क्षणिक है। मन कामनाओं का सागर है। एक कामना की पूर्ति हो इसके पूर्व ही हजार कामनाएँ पैदा हो जाती हैं। क्या वे सब पूरी हो पाती हैं । वस्तुगत उपलब्धियों की खोज में व्यक्ति डूबा रहता है। वे ही जीवन का साध्य हो जाती है । और इधर जीवनी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरन्तर क्षीण होती चली जा रही है। भारी छटपटाहट है। वस्तु में सुख तलाशा, ... प्रयास किया। पर जब तक वस्तु आई शरीर धोखा दे रहा है। लौटकर दुख ही शेष रहता है। विक्षोभ का धारावाही व्यूह मनुष्य को जकड़े रहता है। सामान्यतः यही मनुष्य की यात्रा है।

मनुष्य यह मानकर चलता है कि यह जो दूसरा है वह उसे सुख देगा। दूसरे की खोज ही संसार की यात्रा है। दूसरा-पिता में, पत्नी में, समाज में, धन में, मकान में, धर्म में, यज्ञ में, हर जगह ढूँढा जाता है। सुख दूसरे से ही प्राप्त होगा, यह वह मानता है। और दुःख ? इस सवाल पर वह सोचता ही नहीं है। यह जो दूसरा है। जो संसार है, क्या कभी उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर पाता है ? और सच तो यह है कि यह जो दूसरा है, हमेशा कल में ही आता है। दूसरा, जो है, जिजीविषा में है। कामना में है। उसका आकर्षण यही है कि उसके आधार पर भविष्य की आशा शेष है। इसीलिए मनुष्य भगवान को अपने से अलग मानता है, उनसे कुछ मांगता है, ... और इसी तरह वह इस आशा में जीवित रहता है कि वह जो दूसरा है, उसे आज नहीं तो कल सुख ही देगा।

जहाँ मनुष्य अपने स्वरूप को छोड़कर, अपने स्वभाव से अनभिज्ञ रहकर दूसरे से जुड़ता है वहीं वह दुःख पाता है। यह जो दूसरा है, उसका कभी नहीं हुआ। क्योंकि वह उसका है ही नहीं। उसकी इससे नित्य दूरी है। इसलिए इस दूसरे के लिए—जो संसार है, शरीर है, धन है, परिवार है, सुख की लालसा बनी हुई है। वह कभी पूरी होगी कि नहीं ? मनुष्य उसे हो पा सकता है, जो कि उसका है। सदा से उसका है। हाँ, आज भले ही उसकी विस्मृति हो गई हो। लेकिन होता यह नहीं है, मनुष्य जो उसका है, जो वह है, उसे छोड़कर जो उसे कभी प्राप्त नहीं होने वाला है, निरन्तर परिवर्तनशील हैं, उसे चाहता है। और जब वह उसे नहीं मिलता है, तब वह दुःखी होता है। विक्षोभ जग जाता है। दुःख का कारण है, अपने को छोड़कर, परे सुख की खोज करना। जो स्वभाव है, उसे भूलकर जो नहीं है उसमें डूबना। जब तक 'स्व' की समझ नहीं होती, दुःख के कारण की तलाश नहीं होती, तब तक यह दूसरा ('पर') ही महत्वपूर्ण रहता है। यही विडम्बना है।

दुःख, दुःखी के उद्धार के लिए आता है। उसको समझ को जागृत करता है। पर मानव लोलुपता के अधीन होकर सुख की तलाश में भटकता है। इसीलिए दुख और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसका प्रभाव आदर के योग्य है। यही प्रभाव अपनी तीव्रता में जो है उसकी प्राप्ति का ध्यान दिलाता है। जब वह पाता है कि संसार उसकी आवश्यकता की पूर्ति में सहायक नहीं है, तभी वह अन्वेषी बनता है, खोजी होता है। जो अब तक विस्मृति में था, उसकी स्मृति ही जिज्ञासा जगा देती है। जिज्ञासा जगते ही विवेक का आदर होता है। विवेक था, अभी भी जीवन में था, ... पर इन्द्रिय ज्ञान का आदर था। विवेक तिरस्कृत था। विवेक का आदर होते ही, अविवेक छूटता है। विवेक जो है उसके प्रति आदर भाव तथा जो नहीं है उसके प्रति विमुखता का भाव जगाता है। आदर का भाव ज्यों-ज्यों दृढ़ होता जाता है, आचरण में स्वाभाविक परिवर्तन आता है। जिसे छूटना है वह छूटना शुरू हो जाता है। अविवेक से ही बुरे भाव और बुरे कर्म होते हैं। विवेक के जागृत होते ही जो कुछ श्रेष्ठ है वह आचरण में आने लगता है। साधन प्रारम्भ हो जाता है।

साधन कहीं बाहर नहीं, अपने पास ही है। अपनी आवश्यकताओं को समझा जाए। मन का आगे-पीछे का चिन्तन ही बाधक है। जो वस्तु-गत स्मृतियों तथा व्यक्तिगत आकांक्षाओं में डुबाये रहता है। यही अविवेक है। यही विक्षोभ का कारण है। इसीलिए आवश्यक है कि पहले निज के विक्षोभ को समझा जाए। जब तक विक्षोभ की समझ नहीं होगी, तब तक बाहर आने का सार्थक प्रयास भी नहीं हो सकता।

मानव सोचता है कि जो दुःख है वह जगत के कारण से है। जगत ही सुख देने वाला है। जगत ही दुःख दूर कर देगा। जीवन भर भौतिक वस्तुओंकी अप्राप्ति ही दुःख बन जाती है। वस्तुओं की दासता और उनकी अप्राप्ति दुःख का बहुत बड़ा कारण हो जाता है। वह वस्तुओं से अपने आपको बाहर ला नहीं पाता। वह उनकी प्राप्ति के लिए छटपटाता रहता है। यह प्राप्ति ओस कणों से प्यास बुझाने की तरह है। उसकी सांसारिक भूख उसी तरह आजीवन कायम रहती है। अभी-कभी अवसर आता है, विवेक कौंध जाता है। उसे लगता है कि कामनाओं की पूर्ति से प्राप्त तुष्टि क्षणिक है। हर कामना पूरी भी नहीं होती, अतृप्त कामनाए असंख्य रहती हैं। अपूर्ति से विक्षोभ, ... दुःख का अनवरत प्रवाह कायम रहता है। कभी-कभी विवेक का आदर जब साधक करता है, तो व्याकुलता बढ़ती है। जिज्ञासा बढ़ती है। वह अविवेक को समझ जाता है, समझ बढ़ते ही वह साधन यात्रा पर बढ़ जाता है। अन्यथा वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुनः विवेक का अनादर करते हुए सांसारिक प्रवाह में डूबता-उतराता रहता है।

कामना-निवृत्ति ही शान्ति में प्रवेश कराती है। यहाँ सरोवर की लहरें शान्त है। तली स्पष्ट दिखाई देने लगती है। चित्त दर्पण है। पक्षी उड़ा तो लगा वह दिखा। जब तक वह उड़ता रहा, विम्ब रहा। जाते ही जल फिर वही दर्पण का दर्पण। यही तो प्रशांत मन है। उन दिन पाया, शरद के शांत सरोवर में भी हवा के स्पर्श से लहरें उठ गयीं। तब जाना मात्र सरोवर का उद्वेलन-हीन होना ही साध्य नहीं है। कामना निवृत्ति से प्राप्त शान्ति भी स्थायी नहीं है। उसमें रहने का भाव, साधक के मन में सूक्ष्म अहंकार जगा देता है। यहाँ से पार जाना ही कठिन है। उसके जगते ही यह जो दूसरा है, संसार है, वह उपस्थित हो जाता है। हो सकता है, साधक उपदेशक बन जाए, ऋषि-महर्षि हो जाए, ... भगवान बन बैठे। ससार पर प्रभाव डालने की आकांक्षा बलवती हो जाती है। साधक अपनी विशिष्टता स्थापित करने के प्रयास में डूब जाता है। वह पुनः संसारके आकर्षण में लौट आता है।

तो फिर ?

जल का बर्फ हो जाना ही यहाँ साध्य है। सुख-दुःख, शान्ति से परे जो है वही साध्य है। यह सच है कि शान्ति बहुमूल्य है। पर अन्त में उससे भी परे जाना है। तभी जो है उसकी प्राप्ति संभव है। साध्य वही है जो नित्य है तथा जिसकी प्राप्ति से नित्य अभय और नित्य शान्ति प्राप्त होती है। यही धर्म का रहस्य है। जो धार्मिक है वह इसे पाने में समर्थ है। जिसकी प्राप्ति सहज हो, जो विनाश युक्त न हो, तथा जिसमें आत्मीयता हो। जो इसी जीवन में, आज में अभी प्राप्त किया जा सकता है, वही साध्य है। साधन की सही समझ और विवेक के प्रति आदर भाव साध्य से अवश्य ही मिला देता है। जीवन आज में, अभी में, वर्तमान में ही जिया जाता है। वहीं साध्य उपस्थित है। विवेक का आदर होते ही मन की रुग्णता चली जाती है जो दुःख का कारण है।

सन्तवाणी

(१) ईमानदार चौकीदार बेईमान शासक से बड़ा आदमी है।

(२) दूसरों की बिना हानि पहुँचाये छोटी से छोटी सेवा महान फल देती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बोधप्रसंग—

भाग्य और पुरुषार्थ

सकडाल-पुत्र कुम्हार का काम करता था। उसके मिट्टी के बर्तनों का व्यापार भी अच्छा चलता था। गोशालक का अनुयायी होने के कारण वह भाग्यवादी था। उसकी मान्यता थी कि जो कुछ होता है, नियतिवश होता है, मानव के कृतित्व जैसा कुछ नहीं है।

एक बार भगवान् महावीर उधर से निकले ओर उसके यहां ठहरे। बातचीत चली। उसी दौरान में उन्होंने पूछा—' भाई, एक बात बताओ ! तुम्हारे यहां मिट्टी के वर्तन बनाये जाते हैं—भला यह सब कौन करता है ?" सकडाल-पुत्र ने झट उत्तर दिया—"सब नियतिवश ही तो होता है— जब सहयोग मिल जाता है, तब ऐसा हो जाता है।" उन्होंने फिर पूछा—"अच्छा अगर तुम्हारे इन पके-पकाये बर्तनों को कोई तोड़ दे तो ?" कुम्हार कुछ तमका—तोडेगा कैसे, मेरा नुकसान जो होता है; और वह है कौन मेरा नुकसान करने वाला ?" भगवान् महवीर ने फिर पूछा— 'अगर कोई अत्याचारी तुम्हारी पत्नी से बलात्कार करे तो·····? यह सुनना था कि सकडाल-पुत्र आवेश में आगया —कौन ? कौन माई का लाल है जो मेरे रहते मेरी पत्नी की तरफ आंख उठा कर देखे—मैं उसकी खबर न ले लूं ?" महावीर बोले—"लेकिन इसमें उसका क्या दोष ? जो कुछ होता है नियतिवश ही होता है !" सकडाल-पुत्र की आंखें खुलीं। उसकी सारी भाग्यवादी मान्यता क्षर-भर में दूर हो गई। वह बड़े विनम्र भाव से बोला—"नहीं महाराज, आप ठीक कहते हैं। भाग्य का बीज तो पुरुषार्थ ही है।"

बाहुबलि और भरत

सम्राट भरत की दिग्विजय में सिर्फ इतनी कमी रह गयी थी कि उनके छोटे भाई पोदनपुर-नरेश बाहुबलि ने उनकी आधीनता स्वीकार नहीं की थी। बाहुबलि के पास संदेश भेजा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—'महासम्राट पिता श्री ऋषभदेव महाराज ने मुझे यह राज्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिया था। मैं अपने बड़े भाई का सम्मान करता हूँ, पर वे इस राज्य पर कुदृष्टि न डालें।'

भरत को तो चक्रवर्ती बनना था। वे अपनी दिग्विजय को अपूर्ण नहीं रहने देना चाहते थे। रण भेरी बजने लगी। चतुर मंत्रियों ने सम्मति दी—"यह तो भाई-भाई की लड़ाई है सम्राट! व्यर्थ के नर-संहार से क्या लाभ? आप दोनों ही दृष्टि-युद्ध, जलयुद्ध और मल्ल-युद्ध करके हार-जीत का फैसला कर लें।'

दोनों ने यह बात मान ली। दृष्टि-युद्ध और जल-युद्ध में बाहुबलि जीत गये। फिर दोनों भाई अखाड़े में उतरे। जब इसमें भी जीतने के भरत को लक्षण न दिखे, तो उन्होंने अपने पिता से प्राप्त अमोघ अस्त्र 'चक्ररत्न' का अपने छोटे भाई पर प्रयोग कर दिया। लेकिन 'चक्ररत्न' कुटुम्बियों पर नहीं चला करता, इसलिए वह बाहुबलि के पास पहुँच कर लौट आया।

बाहुबलि ने अपनी प्रचण्ड भुजाओं से भरत को अपने सिर से भी ऊपर उठा लिया और जमीन पर पटकने ही वाले थे कि एकाएक ज्ञान का उदय हुआ। वैराग्य हो गया। बाहुबलि ने धीरे से भरत को सामने खड़ा कर दिया और बोले—'भाई, क्षमा करना। इस राज्य-वैभव के मद से अन्धा होकर मैं बड़े भाई का अपमान कर बैठा। यह कहते हुए बाहुबलि मल्लशाला से निकल कर सीधे वन को चल दिये और घोर तप में लीन होगये।

दस्यु से साधु

विद्युच्चर एक राजकुमार था, लेकिन बुरी संगत के असर से वह डाकू बन गया। उसके गिरोह में ५०० डाकू थे! पिता ने दुःखी होकर उसे घर से निकाल दिया। वह अपने गिरोह के साथ घूमता-फिरता एक नगर के पास पहुँचा। नगर के बाहर घने जंगल में पड़ाव डाल दिया गया और विद्युच्चर किसी मालदार आसामी की खोज में नगर के अन्दर दाखिल हुआ।

उसने देखा कि नगरी खूब सजी हुई है और नगरवासी किसी के स्वागत की तैयारी में लगे हुए हैं। पूछने पर मालुम हुआ कि नगर सेठ के पुत्र जम्बूकुमार लड़ाई जीतकर आरहे हैं, उन्हीं के स्वागत की तैयारियां हो रही हैं। कुछ देर में जम्बूकुमार की सवारी आ पहुँची। विद्युच्चर डाकू की नजर उनके गले में झूमते हुए बेशकीमती जवाहरात पर पड़ी। डाकू ने अपने शिकार को भांपा और मन-ही-मन उसके घर डाका डालने का संकल्प करता हुआ अपने पड़ाव की ओर चला।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जम्बूकुमार अभी अविवाहित थे। बचपन से ही उनका झुकाव वैराग्य की तरफ था। घर में रहते जरूर थे और दुनियदारी के फर्जों को भी पूरा करते थे, लेकिन थे बिल्कुल अनासक्त। उन्होंने कई वार घरबार छोड़कर साधु बन जाने का इरादा किया, मगर मां-बाप ने मजबूर कर दिया। उनके पिता ने यह सोचकर, कि संसार में फँस जाने पर अपना पुत्र वैरागी न रह सकेगा, उनके विवाह का इन्तजाम किया। आठ रूपवती कन्यायें चुनी गईं। जम्बूकुमार ने उन कन्याओं के पिता के पास खवर भेजी कि 'विवाह होने के दूसरे ही दिन मैं घरबार छोड़कर साधु वन जाऊँगा। इसलिए मेरे साथ अपनी कन्याओं को न व्याहें।' लेकिन कन्याओं ने अब दूसरा पति वरण करना स्वीकार न किया। धूमधाम से विवाह होगया।

जब जम्बूकुमार अपनी आठों स्त्रियों के साथ अपने शयन-गृह में मौजूद थे, विद्युच्चर डाकू कमन्द के जरिये खिड़की पर पहुंचा। परन्तु वातचीत की आवाज सुनकर वहीं ठिठक गया। जम्बूकुमार अपनी पत्नियों को धर्मोपदेश दे रहे थे और कह रहे थे कि सूरज निकलते ही मैं दीक्षा ले लूंगा। जम्बूकुमार के उपदेश और भरी जवानी में अपार दौलत और बेहद खूबसूरत आठ युवतियों के त्यागने की बात ने खिड़की पर बैठे हुए डाकू के दिल की आंखें खोल दीं।

जब सुबह हुई और जम्बूकुमार घरबार छोड़कर वन की ओर चले, तब विद्युच्चर भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। जम्बूकुमार मुनि हुए। और अपने पांच सौ साथियों समेत विद्युच्चर भी अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित करने के लिए उनकी शरण में जाकर साधु बन गया। ❖

१. किसी उदारता से आपका जन्म हुआ, फिर आपने अनुदारता को क्यों पसन्द किया ?

२ यदि आप अपने साथ रहने वालों को प्रेम नहीं कर सकते तो बिना देखे परमात्मा को कैसे कर लोगे ?

३ ठीक काम करने से काम नाश होता जायगा और मांग पूरी होती जायगी।

४ चिल्ला-चिल्ला कर भजन करने से, थक जाने पर भजन खंडित हो जाता है। (सन्तवाणी)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्तव्य-विज्ञान

—श्री शादीलाल वर्मा,
शाखा-सभा, डेरा बाबा नानक, (पंजाब)

मानव-जीवन विज्ञान, दर्शन एवं आस्था का पुञ्ज है। हम में जो बल का तत्व है उसका सदुपयोग ही कर्तव्य-विज्ञान अथवा भौतिक वाद हैं। हम में जो विवेक का तत्व है उसका आदर ही जीवन-दर्शन अथवा अध्यात्मवाद है। हममें जो आस्था का तत्व है उसका सदुपयोग ही ईश्वरवाद है। कर्तव्य-विज्ञान मानव-जीवन का मुख्य अङ्ग है। संसार में ठीक तरह से रहने के लिए जिस विज्ञान की आवश्यकता है उसी का नाम कर्तव्य-विज्ञान है। यह कोई कल्पना नहीं है, बल्कि मानव-जीवन का ठोस सत्य है। इसकी खोज केवल मस्तिष्क द्वारा नहीं होती, बल्कि इसको जीवन में धारण करने से होती है।

यदि हम अपनी वस्तु-स्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें, तो साफ मालूम होता है कि हमारे मन में कोई-न-कोई उथल-पुथल रहती ही है। यह या तो संकल्प-पूर्ति के सुख की आशा के रूप में है अथवा संकल्प-अपूर्ति के दुःख के भय के रूप में हैं। इस भय और आशा के जाल में फँसे हुए हम अशान्त हैं। वर्तमान की यह अशान्ति शान्ति की माँग के सिवा कुछ नहीं है। संकल्प-पूर्ति के सुख का भोग करने से ही नए संकल्प पैदा होते रहते हैं। परंतु सभी संकल्प किसी के भी पूरे नहीं होते, इसलिए संकल्प-अपूर्ति के दुःख का अनुभव भी होता रहता है, जो भय को जन्म देता है। तो मन की अशान्ति का मूल कारण हुआ संकल्प-पूर्ति के सुख का भोग। अब विचार पैदा होता है कि यदि हमें अपने संकल्प-पूर्ति के सुख का भोग नहीं करना है तो फिर करने की रुचि और पाने के प्रलोभन का क्या करें? मानव सेवा सङ्घ हमें सलाह देता है कि इनका सदुपयोग है दूसरों के अधिकार की रक्षा में और अपने अधिकार के त्याग में। दूसरों के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिकार की रक्षा से करने का राग नाश होता है और अपने अधिकार के त्याग से हमें शान्ति मिलती है। शान्ति की प्राप्ति से ही पाने का प्रलोभन नाश होता है। अतः कर्तव्य-विज्ञान का फल शान्ति की प्राप्ति है।

कर्तव्य-विज्ञान की दृष्टि से हम दूसरों के प्रति जो कुछ भी करेंगे वह कई गुना होकर हमें वापस मिलेगा। यह प्रकृति का विधान है। जैसे खेत में हम दाना डालते हैं तो वह कई गुना हो जाता है। तो यह विधान हमें प्रेरणा देता है कि मानव-जीवन में दूसरों के साथ बुराई करने का कोई स्थान ही नहीं है। बुराई करने से पहले हमें स्वयं बुरा बनना पड़ता है, और बुराई का फल दुःख के रूप में भोगना पड़ता है। बुराई करने से दूसरों से भेद और भिन्नता पैदा हो जाती है, जिसका फल मोह और आसक्ति है जो हमें स्वार्थी एवं सीमित बनकर मृत्यु की ओर ले जाती है। इसीलिए मानव सेवा सङ्घ कहता है कि जो सुख किसी का दुःख बनकर आता है वह कालान्तर में भयंकर दुःख में बदल जाता है। और दूसरों को सुख देने के लिए जिस दुःख को अपनाया जाता है वह हमें शान्ति तथा आनन्द तक ले जाता है। सुख देने से सुख मिलता और सुख का प्रलोभन छोड़ने से शान्ति मिलती है। अतः कर्तव्य-विज्ञान हमें बुराई-रहित होकर भलाई करने की प्रेरणा देता है।

जब से मानव-समाज ने अपने कर्तव्य को भूल कर अपने अधिकारों का राग अलापना शुरू किया है तभी से व्यक्तिगत जीवन में क्षोभ, पारिवारिक जीवन में अशान्ति एवं सामाजिक जीवन में संघर्ष उत्पन्न हो गया है। सुख एवं शान्ति से वंचित मानव समाज अपने-अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अनेक वर्गों में विघटित होकर विनाश एवं अवनति की ओर बढ़ रहा है। समाज की यह दुर्दशा कर्तव्य-विज्ञान को भूलने से हुई है। पूज्य श्री महाराज जो कहा करते थे कि सुखियों को दुःखी करके जो भौतिकवाद एवं समाजवाद के गीत गाये जाते हैं वह भौतिकवाद नहीं है, बल्कि भोगवाद है। दूसरों की अवनति से अपनी उन्नति की आशा रखना, दूसरों के दुःख से अपने सुख की आशा करना एक ऐसा प्रमाद है जिसने व्यक्ति को भाई के लिए भाई, पिता के लिये पुत्र एवं समाज के लिए सेवक नहीं रहने दिया। सुखियों और दुखियों के समूह का नाम ही समाज है। सुखियों को देखकर प्रसन्न होना और दुःखियों को देखकर करुणित होना ही सही समाजवाद है, जो कि कर्तव्य-विज्ञान से सिद्ध है। सुखियों का कर्तव्य उदार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होकर दुःखी वर्ग की सेवा करना है और दुःखियों का कर्तव्य क्षोभ-रहित होकर सुख की वासना का त्याग करना है। तभी निर्बल और सबल की एकता सुरक्षित रह सकती है, जो कि सुन्दर समाज का चित्र है।

जगत् से हमें वस्तु, योग्यता एवं सामर्थ्य के रूप में जो कुछ भी मिला है, उसी को सर्व-हितकारी भाव से जगत् की सेवा में लगा देने का नाम ही कर्तव्य है। कर्तव्य उसे नहीं कहते जिसे हम कर नहीं सकते। प्रत्येक परिस्थिति में हम जो कर सकते हैं और जो हमें करना चाहिए वही हमारा कर्तव्य है। हम अपने प्रति दूसरों से भलाई, क्षमा, सहानुभूति एवं ईमानदारी की आशा प्रत्येक परिस्थिति में रखते हैं। यदि हम निज विवेक का आदर करें तो दूसरों के प्रति क्षमाशील, उदार एवं ईमानदार रहेंगे। जो हमारी माँग है वही प्रत्येक प्राणी की माँग है, परंतु जब हम इस वास्तविकता को भूलते हैं तभी अपने एवं समाज के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं। जो दूसरों के अधिकारों की कर्तव्य-बुद्धि से रक्षा करते हैं उनके अधिकार प्रकृति के विधान से स्वतः सुरक्षित रहते हैं। जगत् के काम आने से हमारे मन से जगत् की दासता निकल जाती है, जिसके फलस्वरूप व्यर्थ चिन्तन से रहित होकर हम शान्ति में निवास करते हैं। आज मानव-समाज को यह आश्वासन ही नहीं रहा कि सही काम करने से मुझे शान्ति मिलेगी, जिसका महत्व सुख से कहीं अधिक है। कर्तव्य-विज्ञान ही विश्व-शान्ति का प्रश्न हल कर सकता है। कर्तव्य की अनिवार्यता पर बल देते हुए श्री महाराज जी ने कहा था "ऐ मानव, यदि तुझे गोली खाकर नाली के ऊपर मरना पड़े, तो भी अपने कर्तव्य को मत छोड़! ऐसा करने से तेरी शान्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, परन्तु मारने वाले को जन्म-जन्मान्तर दुःख भोगना पड़ेगा।' कर्तव्य-विज्ञान ही वास्तव में जीवन-विज्ञान है। कर्तव्य-विज्ञान के आदर एवं उसके विधान के अनुसरण से स्वतः ही हमारा प्रवेश अध्यात्म जीवन में हो सकता है और हम शान्ति मुक्ति एवं भक्ति को प्राप्त कर सदा के लिए कृतकृत्य हो सकते हैं।

सन्तवाणी

(१) आपने कसम खाई है कि सुख का भोग नहीं छोड़ेंगे। उधर विधान ने तय किया है कि आपको दुःख भोगना ही पड़ेगा।

(२) बुराई मत करो, मरो चाहे जिओ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्त-पत्रावली

श्री हरिः शरणम् !

[१]

निर्माण निकेतन रांची
३-८-५९

मेरे निज स्वरूप परम प्रिय,
सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। विवेक पूर्वक ममता का त्याग किये बिना न तो निर्विकारता ही आती है और न खिन्नता का ही नाश होता है। और सर्व-समर्थ प्यारे प्रभु की अहैतुकी कृपा का आश्रय लिए बिना उनसे आत्मीयता नहीं होती, जिसके हुए बिना सोई हुई प्रीति जागृत नहीं होती। अतः बाह्य वस्तुओं की तो कौन कहे शरीर आदि वस्तुओं की भी ममता का त्याग और प्यारे प्रभु में आत्मीयता स्वीकार करना अनिवार्य है। यही सफलता की कुञ्जी है। मेरी सद्भावना सदैव तुम्हारे साथ है।

ॐ आनन्द, आनन्द, आनन्द !

तुम्हारा
.....

[२]

पाली-मारवाड़
४-९-५९

मेरे निज स्वरूप परम प्रिय,
सर्वदा शान्त तथा प्रसन्न रहो।

निर्लोभता का सम्बन्ध किसी परिस्थिति से नहीं है अपितु वस्तुओं के अतीत के जीवन में अविचल आस्था से है। भूखा भी लोभ-रहित हो सकता है और जिसका पेट भरा है वह भी लोभी हो सकता है। वर्तमान कार्य ही सर्वोत्कृष्ट कार्य हैं। उसी के द्वारा प्रेमास्पद की पूजा करना है। जब समस्त कार्य एक ही भाव में विलीन होने लगें, तब स्वतः प्रीति की जागृति होगी।

ॐ आनन्द, आनन्द, आनन्द !

तुम्हारा
.....

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधकोपयोगी बातें—

ममतादि दोषों का त्याग करो !

[जैसा मैंने सुना और समझा]

—जीवनराम जी

ममता के रहते समता और आसक्ति के रहते असंगता तथा कामनाओं के रहते शान्ति एवं संकल्पों के रहते विश्राम की प्राप्ति नहीं होती। और समता, असंगता, शान्ति तथा विश्राम के मिले बिना प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं होता। कारण, यह सब दिव्य गुण हैं। इनके आने पर ही मनुष्य का जीवन निर्विकार होता हैं; और तभी प्रेम की प्राप्ति होकर मनुष्य का कल्याण होता है। इस पर प्रश्न हो सकता है कि ममतादि दोषों का नाश कैसे हो ? तो इस पर विचार करने से मालुम होता है कि मनुष्य किसी को अपना न माने, किसी को बुरा न समझे, किसी का बुरा न चाहे और किसी के साथ बुराई न करे। यानी सबको अपना माने, सबको अच्छा माने, सबका भला चाहे और सबके साथ भलाई करे। ऐसा करने से ही हम सुखी को देखकर प्रसन्न और दुःखी को देखकर करुणित हो सकेंगे। और यही सबकी सच्ची सेवा है। ऐसा करने से ममतादि दोषों का नाश होकर समतादि गुण आकर प्रेम की प्राप्ति होगी प्रेम से भगवान की प्राप्ति याने जीव का कल्याण होता है। सो यदि इसी जन्म में कल्याण की प्राप्ति करनी है तो ममतादि दोषों का त्याग करो।

सन्तवाणी

(१) सत्-चिन्तन और सत्-कार्य लोक हित के लिए है। हरि आश्रय और विश्राम अपने लिए है।

(२) गुरु मिल गया, राह मिल गई। अब आपके करने की बात रह गई।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह एक

—श्री कृष्ण लाल बजाज 'प्रदीप'
ए-८२ बजाज निवास,
उल्हास नगर-१

मेरा अनुभव है
हम दोनों एक ही हैं
और मैं एक की ही खोज में हूँ,
एक को ही जानता हूँ
एक को ही मानता हूँ
एक की ही पूजा करता हूँ।
वही प्रथम है
सर्व समर्थ है
अहैतुकी कृपा का प्रदाता
मानव जीवन का त्राता,
बाह्य जगत-
एवं अन्तरतम का ज्ञाता,
जिसकी असीम अनुकम्पा से
यह जीवन
त्याग-सेवा-प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है!

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्या भगवान हैं ?

—श्री भारतेन्दु प्रकाश सिंघल,
आई. पी. एस.
उप-पुलिस महानिरीक्षक, बरेली (उ. प्र.)

[गतांक का शेष]

जो तथ्य तार्किक रूप से सिद्ध किया गया हो वह ही ध्रुव सत्य है, यह अनिवार्य नहीं। तर्क शक्ति अपनी जगह एक विशाल शक्ति है, पर जब उस शक्ति के माध्यम से उस शक्ति के भी बहुत परे किसी शक्ति का ज्ञान अर्जित करना चाहेंगे, तो वह तर्क शक्ति पंगु होकर असफल रह जायेगी। भगवान हैं, यह तो तर्क से सिद्ध किया जा सकता है, पर उसका अनुभव अथवा उसके दर्शन तर्क के आधार पर हो सकें, यह संभव नहीं है।

भगवान को जानना है तो उसी के अंश हम उसे अपने अंदर समाया हुआ ही अनुभव कर सकते हैं। उस महाप्रभु की सत्ता किसी की साक्ष्य के आधार पर नहीं बनी है। जिस तेज-पुंज से स्वयं साक्षी को साक्ष्य की शक्ति मिलती हो उस पुंज को कोई साक्ष्य क्या सिद्ध कर सकेगा ? प्रभु तो मात्र विश्वास से अनुभव में आते हैं। निः स्वार्थ' एवं अपार प्यार हृदय में हो तो एकात्मता होने पर उनके स्वरूप का अनुभव होता है। यहां कोई यह कह सकता है कि जिसे हमने देखा न हो, जाना न हो, उस-से इतना अपार प्यार क्योंकर और कैसे हो सकता ? प्रियजन, प्यार उससे ही करें, यह बिलकुल ही आव-श्यक नहीं। प्यार जीवन में किसी से भी किया जाये, केवल इतना अनिवार्य है कि वह प्यार अत्यन्त निर्मल, नितान्त निःस्वार्थ एवं अगाध हो तभी उस प्यार में प्रभु के दर्शन हो पायेगें।

क्या आपको उस चिन्मय-स्वरूप की आंशिक छटा देखनी है ! तो आइये मेरे साथ। क्या आपका कोई प्रिय है ? अथवा प्राणिमात्र में कोई ऐसा है क्या, जिसे आप तहे-दिल से चाहते हैं, जिसे आप अगाध प्यार करते हैं ? यदि हो तो कृपया बतायें कि,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान न करे, यदि कभी उसकी एक टांग रेल के नीचे आने पर कट जाये, तो क्या आपकी मित्रता अथवा आपका प्यार लंगड़ा हो जायेगा ? यदि उसकी एक आंख फूट जाय तो क्या वह मित्रता, वह प्यार अंधा हो जायगा ? यदि किसी कारणवश, (भगवान् न करे !) उसका शरीर ही न रहे तो क्या आपकी वह मित्रता उसी क्षण में लुप्त हो जायेगी ? क्या वह प्यार भी दिवंगत हो जायेगा ?

नहीं ! नहीं !! नहीं !!! नहीं !!!! यही उत्तर तो मिलेगा न आपसे ? तो मेरे प्रियवर, यह आपके तथा आपके प्रिय के बीच ऐसा कौन सा बंधन है जो न प्रियतम के लंगड़े होने पर लंगड़ा होता है, न अन्धे होने पर अन्धा, यहाँ तक कि उसके स्वयं के न होने पर भी वह बंधन यथावत् बना रह जाता है। तो, जो भी वह बंधन है, वह किस धागे से बंधा है तथा वह धागा किस तत्व से बना हुआ है ?

बस, केवल यही पता करना है कि वह धागा किस तत्व से बना है, और जिस दिन उस तत्व का अनुभव हो जायेगा, उसी दिन भगवान का भी अनुभव हो जायेगा, क्योंकि भगवान् उसी तत्व का एक मात्र स्रोत है। वह तत्व इस सृष्टि में जहाँ भी विद्यमान है उसी परम स्रोत से प्राप्त उसी का एक कण है।

जिस प्रकार अपने प्रियतम की स्मृति में, जिसमें उस तत्व का एक अंशमात्र ही है, एकात्मभाव से स्थिति रहने पर एक अपूर्व रस मिलता है, ठीक उसी प्रकार उसी तत्व के साक्षात भंडार के साथ एकात्म भाव होने पर कितना रस मिल सकता है उसका अनुमान कुछ हद तक कोई भी प्यार करने वाला शायद लगा सकता है। उस परम तत्व के सामीप्य में, अथवा उस सामीप्य की स्मृति-मात्र में रस-ही-रस की वर्षा अन्तरतम में होने लगती है और उसी वर्षा को महात्माओं ने परम आनन्द की स्थिति की संज्ञा दी है। उस स्थिति में पहुँच कर व्यक्ति स्वयं एक प्यार का भण्डार बना जाता है। परम शाँति और उसके फलस्वरूप परम-शक्ति का पुंज बन जाता है। ऐसा बन जाता है कि उसके सम्पर्क में जो आता है वह उसी प्रेम, उसी शांति से आच्छादित हो जाता हैं। यह स्थिति आ जाना इतना दुर्लभ नहीं है कि जितना कुछ लोगों ने बता रखा है। यदि उसकी लगन है तो उस तत्व का अनुभव होना अनिवार्य है। वस्तुतः जब प्रत्येक मानव से यह अपेक्षित है कि वह उस परम तत्व में मिल जाये, तो इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि उससे मिलना अत्यन्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुर्लभ अथवा कठिन नहीं हो सकता। जब दीन से दीन, दलित से दलित व्यक्ति को उसे प्राप्त करने का हक है (और यह बात कृष्ण ने, हजरत मोहम्मद ने तथा ईसामसीह ने अपनी-अपनी तरह निर्विवाद सत्य के रूप में कहा है) तो उसे पाने का मार्ग सुगम होना संभावित ही नहीं वरन् अनिवार्य है। सहस्रों अनुभव करने वालों ने जाना है कि उस परम रस को पाने के बाद संसार में कोई चीज ऐसी नहीं रह जाती है जो उसके सामने अत्यन्त फीकी न लगे। और यही नहीं, पश्चिम के अत्यन्त समृद्धशाली लोगों के अनुभव से यह भी हमारी आंखों के सामने नित्य-प्रतिदिन सिद्ध होता रहता है कि संसार की सारी संपदा होने पर भी वह समृद्धशाली व्यक्ति उस तत्व के अभाव से अपने जीवन में एक अजीब खोखलापन पाता है जो उसे बेचैन रखता है, अशान्त रखता है। तभी तो सैकड़ों करोड़-पतियों के युवा पुत्र और पुत्रियां हिप्पियों के रूप में शांन्ति ढूंढने, रसमय जीवन ढूंढने भारत में आते हैं और कुछ ही यह जानने में समर्थ होते है कि उसे पाने के लिए केवल विश्वास और श्रद्धा पर्याप्त है।

भगवान का भ्रमात्मक रूपः—

'भगवान हमें समृद्धि देगें' 'वे हमें धनवान बनायेंगे, 'भगवान हमारी लॉटरी निकलवायेंगे; 'भगवान हमें मुकदमे में विजयी बनायेंगे 'अथवा' हमें सन्तान देंगे 'हमें अमुक भौतिक सफलता प्रदान करेंगे— 'ऐसी सारी बातें कहना सही माने में भगवान की गरिमा को न पहचानने के लक्षण हैं। भौतिक उपलब्धियां अनिवार्य रूप से हमारे भौतिक शरीर द्वारा किये हुए कर्मों पर निर्भर हैं तथा सदा उसी पर निर्भर रहेगीं। भगवान ने कोई टकसाल अथवा जनरल मरचेंट्स की दुकान नहीं खोल रखी है जो वह यह सब चीजें हमारी भेंट चढ़ाते रहें।

वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि अपने अहंकार की ज्वाला से बचने के लिए जिन कर्मशील, कर्मठ व्यक्तियों को भौतिक उपलब्धियाँ अटूट मात्रा में प्राप्त हुई थी, उन्होंने अपने अहंकार का दमन करने के लिए ही शायद यह कहना शुरू किया था कि जो कुछ प्राप्त हुआ है सब महाप्रभु की अनुकंपा से ही प्राप्त हुआ हुआ है। अनियंत्रित अहंकार को बड़ी से बड़ी उपलब्धियां प्राप्त हो जाना जीव को मिट्टी में मिलाता आया है, यह सबने ही देखा है। इसी से उस अहंकार से डरकर और ऐसा न हो कि उन्हें भी उनका अनियंत्रित अहंकार डस ले, उन महापुरुषों ने अपनी उपलब्धियों का एक-मात्र कारण भगवान है, ऐसा बताना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रारंभ किया होगा। वही परम्परा चलती आई और उसी के कारण हमारे ऐसे मूढ़ जन सच में यह सोचने लगे कि भौतिक उपलब्धियां कर्म से नही वरन् भगवान की अनुकंपा से प्राप्त होती हैं और भगवान का वही भ्रमात्मक स्वरूप लेकर आज भी सहस्रों व्यक्ति अपने कर्म करने के उत्तरदायित्व की अवहेलना करके यह कहते सुने जाते हैं कि भगवान सब ठीक कर देगा। भगवान ही हमको हमारी दीनता से, हमारे दारिद्रय से मुक्ति दिलायेगा।

यदि प्रभु जानते कि उनके नाम पर लोग अपने कर्मों के उत्तरदायित्वों को भुला बैठेंगे, तो शायद निश्चय ही अपने अस्तित्व को छिपा लेते। (वे सर्वज्ञ शायद यह जानते थे। तभी तो इस कलियुग में स्वयं प्रभु ने अपने अस्तित्व को इतना छिपा डाला है और उसे छिपाने की चेष्टा करते रहते हैं कि सहस्रों के मन में सच में ये शंका हो चली है कि भगवान जैसी कोई चीज है भी कि नहीं ?)।

वे क्या नहीं देख रहे हैं कि जिस कर्म के उत्तरदायित्व से वे स्वयं मुक्त नहीं हैं (गीता में स्वयं भगवान ने कहा है कि कर्म मेरे लिए आवश्यक नहीं है फिर भी निरन्तर कर्म में रत रहता हूँ) उन्हीं प्रभु के नाम पर उन्हीं के कुछ बंदे कर्म के उत्तरदायित्व को ही त्याग बैठे हैं। वास्तव में यही विचार-शैली भगवान के नाम को दूषित कर रही है। भगवान के इसी स्वरूप को ही एक वर्ग ने 'अफीम' की संज्ञा दे रखी है। जिस प्रकार अफीम खा कर इन्सान नशे में धुत पड़ा रहता है और अपने उत्तरदायित्वों को भूल बैठता है, ठीक उसी प्रकार भगवान सब ठीक कर देंगे ऐसा सोचकर अपने उत्तरदायित्यों को जो व्यक्ति त्याग बैठता है, वह भगवान का भक्त नहीं वरन् भगवान को अफीम की संज्ञा दिलवाता है। प्रभु के नाम को जो इतना बदनाम करावे, वह व्यक्ति प्रभु का प्यारा क्यों कर व कैसे बन सकता है।

भौतिक उपलब्धियों को देने के लिए भगवान के यहाँ कोई कक्ष नहीं है। जहां-तहां भगवान को आधार मानकर कभी-कदा किसी की यदि लॉटरी लग भी गई, तो उसका श्रेय भगवान को देना सच में भगवान को बहुत नीचे गिराना है। सांसारिक समृद्धियां प्रकृति की देन है और प्रकृति का नियम है कि इस हाथ दे, उस हाथ ले। प्रकृति के शासन में अकारण न कुछ मिलता है और न न ही अकारण कुछ जा सकता है। तो जिसकी लाटरी निकलती है अथवा अकारण समृद्धिशाली बन उठता दीखता है, वह फल उसे अनि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वार्य रूप से उसके पूर्व-कर्मों का ही फल होता है। समस्त भौतिक वस्तुयें प्रकृति की संज्ञा का ही अंग है और वे प्रकृति के अकाट्य नियम अर्थात् कर्मफल भोग के नियम से सर्वथा बंधी हैं और सदा-सदा बँधी रहेगीं।

वैसे भौतिक उपलब्धियां प्रभु से कहीं नीचे स्तर के देवी-देवताओं द्वारा भी मिन्नतें मांगने के रूप में जहां-तहां लोगों की प्राप्त होती दीखती है। मनुष्य अपनी सीमित दृष्टि में वह उअलब्धि उनकी ही दी हुई मानता है। वह शायद यह भूल बैठता है कि यदि उसके अपने कर्म उस फल को भोगने योग्य न होते, तो उसे उस अमुक देवी-देवता के द्वार पर आकर मिन्नतें मांगने की प्रेरणा ही नहीं हो सकती थी। इसका भी कोई कारण होगा कि मिन्नतें तो करोड़ मांगने जाते हैं पर सफलीभूत तो थोड़े से ही व्यक्ति होते हैं। यथार्थ यह है कि अयोग्य को कुछ दिया जाये, यह अन्याय प्रकृति की सत्ता में कोई भी देवी-देवता करने की सामर्थ्य नहीं रखते।

अब तर्क के लिए यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रभु फल देते हैं तो सोचने की बात है कि जैसे किसी व्यक्ति के प्यार को व्यापारिक लाभ का हेतु बना लिया जाये तो वह प्यार घृणा में परिणित हो जाता है, वैसे ही जब प्रभु के प्रति अथवा किसी देवी-देवता के प्रति अपनी भक्ति एवं प्यार का प्रयोग भौतिक लाभ के लिए किया जायेगा, तो उसका प्यार भी बेमाइने होकर रह जायेगा। क्योंकि काम न होने कीद शा में वह श्रद्धा-भक्ति अनास्था एवं अविश्वास का रूप ले लेगी जोकि नास्तिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

जहां तक भगवान का प्रश्न है, तो प्रभु तो उस परमआनन्द, परम शक्ति का पुंज है कि जिसे पाकर फिर अन्य सारा कुछ यहाँ तक कि स्वर्ग और बैकुण्ठ भी नीरस हो जाता है। शायद तभी और जिसे प्रभु का समीप्य नहीं मिल पाता है वह व्यक्ति जीवन में सब कुछ पाकर भी चैन अथवा शांति नहीं पाता है।

तो जहां एक ओर अपने अन्दर स्थित जीव अथवा आत्मा को उसी के परम स्रोत अर्थात परमात्मा से मिले बगेर चैन नहीं मिल सकता वहाँ दूसरी ओर प्रकृति के नियमों के अंतर्गत निर्धारित अनिवार्य कर्म किये बगैर कोई सांसारिक चैन अथवा सुख सम्भव नहीं है।

जीव और देह के इस भेद को जिसने सही मानों में पहचान लिया, वही वीर भारत माता का सच्चा सिपाही, सच्चा सपूत बन सकता है--और वही व्यक्ति इस लोक में भी और प्रभु के लोक, सूक्ष्म जगतों में भी सफलता पा सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

-०- जीवन निर्माण और समाचार पत्र -०-

—श्री पद्मकुमार गर्ग,
कृष्ण भवन, नया बाजार
लश्कर, ग्वालियर-१

अवाध गति से भौतिक प्रगति होने के उपरान्त भी मानसिक चिंता, तनाव, प्रदूषण, अशांति, स्वास्थ्य की समस्या बढ़ती ही जारही है। मूल कारण स्पष्ट है कि हमने जीवन जीने की कला नहीं सीखी। दुर्भाग्य है, हमारी शिक्षा प्रणाली भी हमें यह नहीं सिखा पा रही है। मनुष्य मकड़ी के जाल में फँसे भुनगे की तरह उलझता ही चला जा रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों ने, चिंतकों ने सामाजिक आदर्शों की मूलरूपेण प्रतिस्थापना कर समाज के एवं परिवार के सभी प्रश्नों पर अनुभूत प्रयोग किये हैं और हर प्रकार की आग में तपकर अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले स्वर्ण की भांति सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, जो सदा-सदा हर प्रकार की कसौटी पर पर कसे जाने योग्य रहेंगे।

हम कैसे उठें, कैसे बैठें, कैसे खाय, कैसे सोयें, कैसे व्यवहार करें, क्या दृष्टिकोण रखें, किस परिस्थिति में किस प्रकार क्यों, किसलिए, क्या करना चाहिए, ये जीवन निर्माण सम्बन्धी मूलभूत बातें हैं। आज देश की, विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि हम इन बातों को समझें, सीखें, उन पर मनन और चिंतन करें और इस प्रकार से सही ढंग से जीने की कला सीख कर जिऐं। देश में मानव कल्याण हेतु परमार्थ और पुरुषार्थ के लिए विभिन्न उदात्त, उदारमना एवं सभी भाँति से समर्पित व्यक्तियों व संस्थाओं ने इस दिशा में अनेकानेक अप्रतिम कार्य किए हैं। उनके द्वारा संरचित और संचयित साहित्य भी उपलब्ध हैं, परन्तु मानव को दिग्भ्रमित करने वाली वृत्तियाँ और प्रकाशन भी तेजी से बढ़ते चले जारहे हैं। साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी जो जीवन की जटिलताओं से ग्रसित हैं, उसकी बुद्धि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समझ नहीं पाती, सोच नहीं पाती। विभिन्न प्रकार के नारे एवं वाद चल रहे हैं।

आज के समाचार पत्र भी राजनीति अथवा समाज की अव्यवस्थाओं की चर्चा ही अधिक करते हैं। कौन मरा, कौन मिटा, किस पर कीचड़ उछली या उछाली गई, कौन पिटा, कहाँ लूट-खसोट, आगजनी, हत्या, प्रति हिन्सा आदि सनसनीखेज बातें घटित हुई। अधिकांशतः ये ही बातें दैनिक, साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन प्रकाशित होती रहती हैं। जीवन को सुख-शांति देने वाली सत्संग सम्बन्धी चर्चा कम होती हैं। यदि देश के प्रमुख दैनिक समाचार पत्र नियमित रूप से एवं नित्यप्रति वैदिक संस्कृति के अनुरूप जीवन निर्माण सम्बन्धी एवं सर्वोपयोगी सिद्धान्तों का आधुनिक भाषा व शैली में प्रकाशन करें तो निश्चित ही समाज की बुद्धि प्रशिक्षित करने की दिशा में कार्य हो सकते हैं। आज का पढ़ा-लिखा वर्ग जिस जीवनोपयोगी आवश्यक जानकारी से वंचित है, उसको ये बातें विभिन्न तरीकों से समझ में आ सकेंगी और जब बोधगम्यता, समझ व चिंतन परिष्कृत होगा तब ही आचरण सुधर सकता है।

निवेदन यह है कि समाचार पत्रों के मालिक इस बात को गम्भीरपूवक सोचें और उनके पास जो उपलब्ध साधन है उनका सदुपयोग कर समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभाते हुए कृतार्थ होवें।

—

साम्प्रदायिक सद्भाव

कविश्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर साम्प्रदायिक एकता के कट्टर समर्थक थे। परन्तु दुर्भाग्यवश कलकत्ते में जिन दिनों साम्प्रदायिक तनातनी फैली हुई थी, उन्हीं दिनों रक्षाबन्धन का पर्व आ गया। वे सब साथियों के साथ गंगा स्नान करने गये। लौटते समय सबको राखी बाँधते हुए आने लगे। रास्ते में कुछ मुसलमान सईसों को देखा। कवीन्द्र श्री उनके निकट गये और राखी बाँधी। अपने साथियों की कल्पना के विपरीत सारे सईस बिगड़ने के बजाय कवि से गले मिले। उसके बाद रवि बाबू ने चितपुर की बड़ी मसजिद में जाकर मौलवियों को राखी बांधने की इच्छा प्रकट की। लोगों को अब दंगा होने में ओई सन्देह नहीं रहा। उनके अनेक साथी इधर-उधर खिसक गये। परन्तु कवि ने सभी मौलवियों को राखी बांधी और मौलवियों ने उनके पैर छुये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सच्चे मनुष्यों का निर्माण

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

(आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का गत १९ मई को दिकी के आयुविज्ञान संस्थान में मष्तिष्क शोथ के कारण देहावसान हो गया। वे पिछले कुछ दिनों से अस्वस्थ्य चल रहे थे। आप हिन्दी के मूधंन्य और प्रकांड विद्वान थे। युवकों में सन्तुलित विचार शैली को प्रोत्साहित करके उन्हें चिन्तनशील वनाने में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा। उनकी निम्न-लिखित रचना आज के सन्दर्भ में कितनी सामयिक है —सम्पादक)

दो दो घिनौने विश्व-युद्ध हमारी आँखों के सामने हो गए और ऐसा लग रहा है कि पृथ्वी तीसरी वार फिर और भी भयंकर आसुरी संग्राम में उलझने वाली है। साहित्य और कला के उपासकों को अपनी समूची शक्ति लगाकर मनुष्यता की रक्षा करनी है। कुछ थोड़े से लोग अत्यन्त तुच्छ लाभ के लिए संसार को विकट युद्ध की भट्टी में झोंक देते हैं। इस निम्नत्तम स्वार्थ के लिए मनुष्यता का जो कुछ भी श्रेष्ठ हैं, जो कुछ भी सुन्दर है, जो कुछ भी उदार है, उसकी बलि दे दी जाती है। 'देश प्रेम', 'राष्ट्रीय स्वार्थ' और 'जातीय मर्यादा'—जैसे मोहक नामों के आवरण पहनाकर मनुष्यता की बलि दी जाती है।

जिस दिन प्रथम बार तृणांकुर के रूप में उदित होकर जीव शक्ति ने समूचे जड़ जगत के गुरुत्वाकर्षण को अस्वीकार कर दिया था, उसी दिन से जड़ और चेतन का द्वन्द्व उत्तरोत्तर स्पष्ट ही होता जा रहा है। मनुष्य में जो जड़ता है, वह नीचे की ओर खींचती है; जो चैतन्य है, वह ऊपर की ओर उठाता है। यह बाहरी टीमटाम मनुष्य को जड़ता को निशानी है औ भीतरी सहृदयता और सौजन्य उसके चेतना धर्म का प्रतीक है। अपनीर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति भर जोर लगा कर मैं इस देश के साहित्यिकों को पुकार कर कहना चाहता हूं कि मित्रो जड़ता दबोचने के लिए पंजा उठाए आरही है। यदि समय रहते हमने मनुष्य की भीतरी शक्तियों को उद्‌बोधन नहीं दिया, तो मनुष्यता फिर दारुण वात्याचक्र में उलझ जाएगी। मैं मानता हूँ कि ओद्योगीकरण आवश्यक है; पर उससे संस्कृति का कोई सम्बन्ध नहीं है. सब लोग सुख के बाह्य साधनों पर ही जोर देने लगें, तो त्याग की, सन्तोष की, संयम की, शालीनता की. क्षमा की, सत्य की और मैत्री की बात कौन करेगा ? हमारे युग के सबसे बड़े मनीषी ने इन बातों की ओर ही हमारा ध्यान आकृष्ट किया था। धन का उत्पादन मनुष्य को 'मनुष्य' बनाने के लिए होना चाहिए, उन सद्‌गुणों के विकास के लिए होना चाहिए जो उसे शान्तिकामी, मैत्रीवान, सत्यवादी और उदार बनाते हैं, उन्हें यंत्रपटु, दुस्साहसी, दुर्नीतिपरायण, लड़ाका बनाना हमारा लक्ष्य नहीं है। महात्मा जी ने मनुष्य के इन सद्‌गुणों की ओर ही संसार की जनता को आकृष्ट किया था। मैं आपको स्पष्ट रूप में बताना चाहता हूं कि, मैं धन को आवश्यक समझता हूं उसके उत्पादन का प्रयासी होना चाहता हूं, पर जोर देकर कहना चाहता हूं कि हमारा लक्ष्य मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक सम्मेलन में बड़े सुन्दर ढंग से अपना लेख वाचन करने उठे, तो बच्चों की भाँति हंसते हुए कहने लगे—

—'मेरा यह ४० पृष्ठों का टंकित लेख आप सबको आतंकित करने के लिए पर्याप्त है। अतः सुविधा के लिए इसके मैंने तीन भाग किए हैं—आरम्भ, गप्प और उपसंहार।' सभी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। उसी भाषण में से ये वाक्य मुझे याद आरहे हैं— 'पसीना सुन्दर लिखना सिखाता है, पसीना पवित्र होता है, पावक होता है, बहाया व्यर्थ नहीं जाता।'

—स्वरूपनारायण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्म-स्वातन्त्र्य विधेयक

(हाल ही में भारतीय संसद में प्रस्तुत धर्म-स्वातन्त्र्य विधेयक पर सांसद श्री ओमप्रकाश त्यागी का वक्तव्य)

धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक किसी धर्म, जाति व समुदाय के विरुद्ध नहीं अपितु सभी की रक्षार्थ सब पर समान रूप से लागू होगा। यह इसके उद्देश्य में मैंने स्पष्ट कर दिया है। यह विधेयक, लोभ, लालच, भय व धोखे के बल पर किसी के धर्म-परिवर्तन को दण्डनीय मानता है। ऐसे विधेयक का यदि कोई समुदाय विरोध करता है तो वह परोक्ष रूप से अपने को दोषी सिद्ध करता है। यह बात सत्य है कि किसी भी धर्म में लोभ, लालच, भय व धोखे के बल पर किसी के धर्म-परिवर्तन का समर्थन नहीं किया गया। अतः अपने को धार्मिक कहने वाली संस्था की ओर से इसका विरोध आश्चर्य की बात है। मैंने इस विधेयक को क्यों उपस्थित किया, इसके निम्न कारण हैं—

१. भारत में ६० प्रतिशत जनता गरीबी की रेखा से नीचे रह रही है। उसमें भी ऐसा वर्ग भारी संख्या में है जो सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। उनकी निर्धनता व पिछड़ेपन का कोई अनुचित लाभ न उठा सके। और उनका उत्थान करने के लिए भारत सरकार ने भी राष्ट्रीय संविधान में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को आर्थिक दृष्टि से विशेष सुविधायें दी हैं, परन्तु उनके धार्मिक व सांस्कृतिक ढांचे की सुरक्षा की कोई विशेष व्यवस्था नहीं है, इसीलिए इस विधेयक की आवश्यकता है।

२. देश का बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों की निर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें धर्म परिवर्तन करने पर विवश न कर सके। इसीलिए अल्पसंयक वर्ग की सुरक्षा के लिए यह विधेयक प्रस्तुत है।

३. भारत में विदेशों से भारी मात्रा में विदेशी धन व वस्तुएँ विदेशी मिशनों को आ रही हैं, जो विशेष रूप से भारत के पिछड़े वर्गों व क्षेत्रों में ही कार्य कर रहे हैं। अतः वह विदेशी धन के बल पर असहाय व्यक्तियों की असहायता का लाभ न उठा सकें।

पर्वतीय क्षेत्रों में बलात् धर्म परिवर्तन हो रहे हैं। यह नियोगी व नेगी कमीशनों की रिपोर्ट से सर्वविदित है। इसी अनुभव के आधार पर मध्य प्रदेश, उड़ीसा व अरुणाचल सरकारों को विधेयक पारित करने पड़े।

विधेयक का कोई सरकार या पुलिस अनुचित लाभ उठाकर किसी धर्म प्रचारक को [illegible] में तंग न कर सके इसके लिए विधेयक में धारा ५ व ९ उनकी पूर्ण सुरक्षा करते हैं।

सारांश—विधेयक धर्म-प्रचार व स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन पर रोक नहीं लगाता अपितु बल [illegible] धर्म-परिवर्तन पर रोक लगाता है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने [illegible]य में इस प्रकार के विधेयक का समर्थन किया जबकि उड़ीसा सरकार द्वारा इस सम्बन्ध [illegible]रित विधेयक को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई।

[illegible] अप्रैल १९७९

—ओमप्रकाश त्यागी
संसद सदस्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
License No. 1/73 Read No. NFR
Licensed to Post without Pre-Payment

महावीर ने कहा है

चाहे शत्रु हो चाहे मित्र, चाहे वैरी हो चाहे मीत, सभी जीवों पर, सभी प्राणियों पर समभाव रखना, सबको अपने जैसा समझना ही अहिंसा है। जीवन भर किसी भी प्राणी को मन, वचन और काया से न सताना, किसी की हिंसा न करना सचमुच बहुत कठिन है।

× × ×

जिस तरह तुम्बी पर मिट्टी की तहें जमने से वह भारी हो जाती है और डूबने लगती है ठीक उसी तरह हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार तथा मूर्च्छा, मोह आदि आश्रवरूप कर्म करने से आत्मा पर कर्म-रूप मिट्टी की तहें जम जाती हैं और वह भारी बन कर अधोगति को प्राप्त होती है।

× × ×

पुरुष दुर्जय संग्राम में दस लाख शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, उसकी अपेक्षा तो वह अपनी आत्मा पर ही विजय प्राप्त करले, यही श्रेष्ठ है।

× × ×

काबू में न लाया क्रोध और अभिमान, बढ़ती हुई माया और लोभ—ये चारों नीच कषाय पुनर्जन्म रूपी संसार-वृक्ष की जड़ों को बराबर सींचते रहते हैं।

× × ×

न तो बिना पूछे उत्तर दे; न दूसरों के बीच में बोले; पीठ पीछे किसी की निन्दा करे। न बोलने में कपट भरे झूठे शब्दों को काम में लाये।

× × ×

जो आदमी खुद सजीव या निर्जीव चीजों का संग्रह करता है, दूसरों से ऐसा संग्रह कराता है अथवा दूसरों को ऐसा संग्रह करने की सम्मति देता है, उसका दुःख से कभी भी छुटकारा नहीं हो सकता।

× × ×

आयु थोड़ी है, बाधा-विघ्न बहुत हैं। पिछले संचित कर्मों को [illegible] को तू झटक दे। हे गौतम! पल-भर का भी प्रमाद मत कर।

कु० मुक्तेश्वरी, प्रकाशक, मानव सेवा संघ के लिए
श्री बी० आर० गुप्ता द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, डैम्पीयर नगर, मथुरा में मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi